पानी, पत्थर और पहाड़ की हलचल

शिवप्रसाद जोशी

सुरेंद्र पाल जोशी पहाड़ और पानी और बर्फ़ और जीवन के नये ब्यौरे लेकर आए हैं अपने इन इन्स्टालेशन्स के ज़रिए. कुदरती आफ़त की एक दिल दहलाने वाली तारीख से उन्होंने पत्थरों के बचे हुए टुकड़े और इधर उधर बिखरी हुई जीवन की किरचियाँ उठाई हैं और उनसे एक नये अवसाद का निर्माण किया है. जोशी के इन्स्टालेशन, उनकी खींची तस्वीरें और उनके बनाए पहाड़ों की अमूर्तता एक पहाड़ी जीवन के ऐतिहासिक अवसाद की दास्तानें बन जाती हैं. लेकिन ये आत्मविलाप या आत्मदया के हवाले हो गई रचनाएँ नहीं हैं, इन्हीं सघन दुखों में उत्साह और जिजीविषा के तार भी खिंचे हुए हैं. जोशी की कृतियाँ अपनी मूल स्थिति में जितनी चित्र हैं उतनी ही अपनी प्रस्तुति और प्रदर्शन में संगीत का रुख़ करती हैं. बाज़ दफ़ा कविता उनका एक पड़ाव है.

यही पड़ाव ही उन्हें पहाड़ की दैनंदिन तक़लीफ़ों, यातनाओं और संघर्षों को समझने का अवसर मुहैया कराता है. सुरेंद्र पाल टिहरी बाँध की झील को एक ऐसी सतह की तरह कैमरे पर उतारते हैं जिसमें न जाने कितना इतिहास, कितनी कहानियाँ और कितनी दुहाइयाँ दर्ज हैं. इसी तरह गिरते हुए पहाड़ों और पत्थरों के उनके रेखांकन कई प्रतिष्ठित प्रतिपादित रेखाओं को लाँघते हैं. यह अपनी तरह का अभूतपूर्व काम है. केदारनाथ की त्रासदी और मलबे की दारुण कथा को ये कुछ रेखांकन अपनी लकीरों से जैसे समझाते जाते हैं. जैसे एक कथा सुनाई जा रही हो. इतने सारे पत्थर जहाँ-तहाँ बिखरे हुए, टूटे मकान, पत्थर हुए लोग, स्तब्ध, डूबे हुए....इस रुदन को नहीं सुना गया है. हिंदी के वरिष्ठ कवि रघुबीर सहाय की एक कविता है- इसी रोने में हमें जाननी थी पूरी कथा. सुरेंद्र पाल के ये रेखांकन उस कथा को कहते जाते हैं, कहते जाते हैं और जैसे इन सबसे मिलकर वह एक गाँव का एक टूटता हुआ घर बन जाता है. टूटते हुए बनना. सुरेंद्र पाल के काम की यही

ख़ूबी दिखती है. वहाँ टूटी हुई बरबाद हुई और कहर के हवाले हो चुकी चीज़ें जैसे नया जीवन माँगने आ जाती हैं. वे खुदबखुद खड़ी हो जाती हैं, अपनी बरबादी को दिखाती हुई लेकिन हमारे सामने खड़ी हुई. एक टूटा हुआ मकान अपने समस्त सौंदर्य प्रतीकों, अपनी छटा, अपने स्तंभों, अपने पत्थरों, अपनी लकड़ी, अपनी आग, अपनी स्मृति और अपनी जर्जरता के साथ हमारे सामने हैं.

पानी का वेग भी जैसे इसने अपने में समाहित कर लिया है और यह जैसे हवा पानी मिट्टी आग और आकाश से बनी कोई संरचना है जो छूटती जा रही है और लौटती आ रही है. सुरेंद्र पाल दुनिया के कई देशों की यात्राएँ कर चुके हैं, कहना चाहिए कि उन्होंने कमोबेश दुनिया देख ली है लेकिन जब वे अपने पहाड़ अपने बचपन के रास्तों और स्मृतियों में लौटते हैं तो उनके औजार अपनी देखी हुई , अनुभूत और समझी गई जगहों से बिल्कुल अलग हैं. पहाड़ की व्यथा ही नहीं उसकी गरिमा और उसके जज़्बात भी इन कृतियों में नयी चित्र-भाषा और नये कला-मुहावरे में व्यक्त हुए हैं.

कलाकार आमतौर पर विभिन्न विषयों और वस्तुओं पर अपनी कृतियाँ तैयार करते है. वे रोज़ाना के जीवन, प्रकृति, समाज, उद्योग, तकनीकी, मशीनरी कहीं से भी अपने लिए फ़ॉर्म चुन लेते हैं. सुरेंद्र पाल जोशी ने पिछले दिनों सेफ्टी पिन से एक हेलमेट बनाया था जिसकी कला गलियारों में काफी चर्चा हुई थी. इस बार उन्होंने एक हेलीकॉप्टर की रचना की है जिसे बनाने में करीब एक लाख सेफ्टी पिनों और इस्पात की छड़ों और इस्पाती पट्टियों का इस्तेमाल किया गया है. उत्तराखंड में 2013 की प्राकृतिक विपदा में सेना के हेलीकॉप्टरों की असाधारण मदद को देखकर वे काफी प्रभावित हुए थे. आपदा, राहत और बचाव के काम में हेलीकॉप्टर अब एक अनिवार्य उपकरण की तरह काम में लाया जा रहा है. चाहे बाढ़, अतिवृष्टि, भूकंप, भूस्खलन जैसी विपदाएँ हों या फिर जंगल की आग जैसी घटनाएँ. जोशी का बनाया हेलीकॉप्टर विलासिता और सुख-सुविधा का प्रतीक नहीं है. वह मानवीय श्रम और इंसानी जद्दोजहद का प्रतीक बन गया है. उसमें मैकेनिक जैसी ऊर्जा है लेकिन वह मकैनिकल नहीं है. एक ही समय में वह स्थिरता और गतिशीलता का हेलीकॉप्टर है. उसकी इस्पाती चमक और सेफ्टी पिनों की कलात्मक बुनावट उसे

एक नये ढंग से समझने का अवसर देती है. साहस और उम्मीद की वह एक ठोस कलात्मक अभिव्यक्ति है. जब आप इस हेलीकॉप्टर को एक प्लेटफ़ॉर्म पर रखे इंस्टालेशन की तरह देखते हैं तो लगता है बस अब यह उड़ान भरना ही चाहता है. इतना मॉमेंटम इसमें निहित है.

पहाड़ और जीवन के रूपों को नये आयाम देने के साथ सुरेंद्र पाल जोशी ने पानी को लेकर भी एक नया आयाम गढ़ा है. सेफ्टी पिनों की ही मदद से उन्होंने गिरते हुए पानी की कोमलता और उसकी चुभन को दिखाने की कोशिश की है. पहाड़ के लिए पानी बरबादी का भी बायस बना है. सुरेंद्र पाल इसे बहुत स्पष्ट रूप से तो नहीं लेकिन सांकेतिक रूप से बताते चलते हैं. वे पानी की जीवनदायी भंगिमाओं और उसके सौंदर्य को ही देखने वाले और तृप्त रह जाने वाले कलाकार नहीं हैं. उन्होंने पानी की विकटता, उसके संजाल और उसके आघाती और जानलेवा वेग को भी पकड़ा है.

स्मृतियों का बेढ़बपन, उनकी गैरतरतीबी, उनका अटपटापन, उनकी दरारें क्या व्यवस्थित की जा सकती हैं? क्या वे वैसा का वैसा रखी जा सकती हैं जैसा हमारे अनुभव में आती हैं, जैसे वे हमारे सपनों में आती हैं? क्या उनकी कोई 'विखंडित व्यवस्था' बनती है? कुछ इसी तरह के सवालों के जोखिम के साथ सुरेंद्र पाल जोशी ने नये प्रयोग किए हैं जिसकी एक बानगी इस पुस्तक में देखी जा सकती है. जोशी ने कैनवस मिक्स मीडिया एक्रिलिक उपकरण औजार पेंट क़ाग़ज़ टेक्सचर के साथ जो तोड़फोड़ की है वह अभूतपूर्व है. वे समकालीन यथार्थ के प्रकट बिंबों से अलग उसी समकालीनता के ऐसे बिंबों की तलाश करते हैं जो बेध्यानी में रहने को अभिशप्त हैं. कह सकते हैं कि सुरेंद्र अपनी कला से ऐसे बिंब बजाय तलाश करने के उन्हें निर्मित करते हैं.

कनाडा की मशहूर आर्टिस्ट मार्ग्रेट रोज़मैन ने कहा था कि वे एक 'रिएलिस्टिक' विषय के एक अमूर्त तत्व की तलाश में रहती है और उसमें दिलचस्पी जगाने और गहराई निर्मित करने के लिए टेक्सचर का इस्तेमाल करती हैं. सुरेंद्र जोशी कमोबेश ऐसे ही एक बिंब के साथ एक बिंब अपना ले आते हैं. स्मृति के साथ लकीर आती है. लकीर के साथ धागा. धागे के साथ दरार. दरार के साथ रंग, रंग

के साथ कैनवस का टुकड़ा. और उस टुकड़े के साथ एक पूरा विज़ुअल विधान. यह सुरेंद्र जोशी का निर्मित शिल्प है. उनके यहाँ पेंटिंग एक सजीधजी सुव्यवस्थित रंगकारी में पेश की हुई दिखती है लेकिन आप ज़रा ग़ौर से देखें तो पाएँगें कि उसमें हर उस चीज़ का अपना उत्ताप अपनी उद्विग्नता अपना कोहराम है जिनका ज़िक्र उपरोक्त लाइनों में है. वहाँ जो पेश किया जा रहा है वह पेशानी पर भी लकीरें खींच देता है. तो यह तोड़फोड़ ज़रा अलग क़िस्म की है अलग ढर्रे की है. यह तोड़फोड़ एक कैनवस को धागों से लकीरों से आयातों वर्गो और तिकोनों से भर देती है, एक संतुलन को अस्थिर कर देती है और एक नए असंतुलन की रचना करती है. यह असंतुलन भी इतना सधा हुआ है कि कोई रंग फिसलता नहीं , कोई सिमिट्री टूटती नहीं है, कोई विचार गिर नहीं जाता है. सुरेंद्र जोशी पेंटिग में स्मृति के इसी व्यवस्थित तार्किक टेढ़ेपन के पेंटर है.

वे उलटपुलट के पेंटर हैं. उनके यहाँ स्मृति की रेखाएँ कहीं से भी निकलकर कहीं चली जाती हैं. कभी वे एक ख़ामोश आकृति की तरह बीचोंबीच झूलती रहती हैं जैसे किसी अभिशप्त समय की कोई धारा. जैसे हमारे ही समय की एक ज़ख़्मी पुकार, जो लकड़ी के नुकीले लंबे टुकड़े की तरह है या फिर बर्फ़ की नुकीली फटी हुई सिल्ली की तरह या रोशनी की एक दूर तक खुलती जाती फांक और उत्तरोत्तर और तीखी होती हुई. उसके आसपास अन्य बेचैनियाँ हैं.

-शिवप्रसाद जोशी